4 डॉ० राजेन्द्र प्रसाद

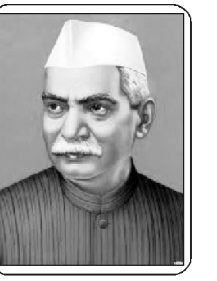

लेखक-एक संक्षिप्त परिचय

- **जन्म**–3 दिसम्बर, 1884 ई०।
- **जन्म-स्थान**–जीरादेई (छपरा), बिहार।
- **मृत्यु**–28 फरवरी, सन् 1963 ई०।
- भारत के राष्ट्रपति रहे।
- भारतरत्न से अलंकृत।
- **सम्पादन**–'देश' पत्रिका।

देशरत्न डॉ० राजेन्द्र प्रसाद का जन्म 3 दिसम्बर, 1884 ई० में बिहार राज्य के छपरा जिले के जीरादेई ग्राम में हुआ था। कलकत्ता (अब कोलकाता) विश्वविद्यालय से इन्होंने एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। राजेन्द्र बाबू बड़े मेधावी छात्र थे और प्रायः सभी परीक्षाओं में इन्होंने प्रथम स्थान प्राप्त किया। मुजफ्फरपुर के एक कॉलेज में कुछ दिन अध्यापन-कार्य करने के पश्चात् सन् 1911 से 1920 ई० तक राजेन्द्र बाबू ने क्रमशः कलकत्ता तथा पटना हाईकोर्ट में वकालत की, परन्तु गाँधीजी के आदर्शों, सिद्धान्तों तथा आन्दोलनों से प्रभावित होकर सन् 1920 ई० में इन्होंने वकालत छोड़ दी और पूर्ण रूप से देश-सेवा के कार्य में लग गये।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के ये तीन बार सभापति चुने गये। राजेन्द्र बाबू 1946 एवं 1947 में भारत के पहले मंत्रिमण्डल में कृषि एवं खाद्य मंत्री रहे। आप 26 जनवरी, 1950 से 14 मई, 1962 तक देश के राष्ट्रपति रहे। 1962 ई० में इन्हें भारत की सर्वोच्च उपाधि 'भारत-रत्न' से अलंकृत किया गया। सत्यनिष्ठा, ईमानदारी, निर्भीकता, देशभक्ति, साधुता और सादगी इनके रोम-रोम में व्याप्त थी। राजेन्द्र बाबू की मृत्यु 28 फरवरी, सन् 1963 ई० को हुई।

डॉ० राजेन्द्र प्रसाद एक कुशल लेखक भी थे। सामाजिक, शैक्षिक एवं सांस्कृतिक विषयों पर इनके लेख बराबर निकलते रहते थे। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति पद को भी इन्होंने सुशोभित किया। 'नागरी प्रचारिणी सभा' और 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' के माध्यम से हिन्दी को समृद्ध बनाने में योगदान देते रहे। इन्होंने 'देश' नामक पत्रिका का सफलतापूर्वक सम्पादन किया। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में इनके लेख एवं व्याख्यान भी प्रकाशित होते रहते थे। राजनीति, समाज, शिक्षा, संस्कृति, जन-सेवा आदि विषयों पर इन्होंने अनेक प्रभावपूर्ण निबन्धों की रचना की। जनसेवा, राष्ट्रीय भावना एवं सर्वजन हिताय की भावना ने इनके साहित्य को विशेष रूप से प्रभावित किया है। इनकी रचनाओं में उद्धरणों एवं उदाहरणों की प्रचुरता है। इनकी रचनाओं में अत्यन्त प्रभावपूर्ण भावाभिव्यक्ति देखने को मिलती है।

डॉ० राजेन्द्र प्रसाद जी ने अनेक विषयों पर लेखनी चलायी है। इनकी कृतियों का विवरण इस प्रकार है—

'इण्डिया डिवाइडेड', 'सत्याग्रह एट चम्पारण', 'भारतीय शिक्षा', 'गाँधीजी की देन', 'शिक्षा और संस्कृति', 'मेरी आत्मकथा', 'बापू के कदमों में', 'मेरी यूरोप यात्रा', 'संस्कृति का अध्ययन', 'चम्पारन में महात्मा गाँधी' तथा **'खादी का अर्थशास्त्र'**। इनके अतिरिक्त इनके भाषणों के भी कई संग्रह प्रकाशित हुए हैं।

राजेन्द्र बाबू की भाषा सहज, सरल, सुबोध खड़ीबोली है। इनकी भाषा व्यावहारिक है, इसलिए उसमें संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी आदि भाषाओं के शब्दों का समुचित प्रयोग हुआ है। ग्रामीण कहावतों एवं ग्रामीण शब्दों का भी प्रयोग किया है। इनकी भाषाओं में कहीं भी बनावटीपन की गन्ध नहीं आती। मुख्य रूप से इनकी शैली के साहित्यिक एवं भाषण दो रूप प्राप्त होते हैं।

प्रस्तुत **'भारतीय संस्कृति'** पाठ एक भाषण का अंश है। इसमें बताया गया है कि भारत जैसे विशाल देश में व्याप्त जीवन व रहन-सहन की विविधता में भी एकता के दर्शन होते हैं। विभिन्न भाषा, जाति व धर्म की मणियों को एकसूत्र में पिरोकर रखनेवाली हमारी भारतीय संस्कृति विशिष्ट है।

●●

भारतीय संस्कृति

कोई विदेशी, जो भारत से बिल्कुल अपरिचित हो, एक छोर से दूसरे छोर तक सफर करे तो उसको इस देश में इतनी विभिन्नताएँ देखने में आयेंगी कि वह कह उठेगा कि यह एक देश नहीं, बल्कि कई देशों का एक समूह है, जो एक-दूसरे से बहुत बातों में और विशेष करके ऐसी बातों में, जो आसानी से आँखों के सामने आती हैं, बिल्कुल भिन्न है। प्राकृतिक विभिन्नताएँ भी इतनी और इतने प्रकार की और इतनी गहरी नजर आयेंगी, जो किसी भी एक महाद्वीप के अन्दर ही नजर आ सकती हैं। हिमालय की बर्फ से ढकी हुई पहाड़ियाँ एक छोर पर मिलेंगी और जैसे-जैसे वह दक्खिन की ओर बढ़ेगा गंगा, जमुना, ब्रह्मपुत्र से प्लावित समतलों को छोड़कर फिर विन्ध्य, अरावली, सतपुड़ा, सह्याद्रि, नीलगिरि की श्रेणियों के बीच समतल हिस्से रंग-बिरंगे देखने में आयेंगे। पश्चिम से पूर्व तक जाने में भी उसे इसकी विभिन्नताएँ देखने को मिलेंगी। हिमालय की सर्दी के साथ-साथ जो साल में कभी भी मनुष्य को गर्म कपड़ों से और आग से छुटकारा नहीं देती, समतल प्रान्तों की जलती हुई लू और कन्याकुमारी का वह सुखद मौसम, जिसमें न कभी सर्दी होती है और न गर्मी, देखने को मिलेगी। अगर असम की पहाड़ियों में वर्ष में तीन सौ इंच वर्षा मिलेगी तो जैसलमेर की तप्तभूमि भी मिलेगी, जहाँ साल में दो-चार इंच भी वर्षा नहीं होती। कोई ऐसा अन्न नहीं, जो यहाँ उत्पन्न न किया जाता हो। कोई ऐसा फल नहीं, जो यहाँ पैदा नहीं किया जा सके। कोई ऐसा खनिज पदार्थ नहीं, जो यहाँ के भू-गर्भ में न पाया जाता हो और न कोई ऐसा वृक्ष अथवा जानवर है, जो यहाँ फैले हुए जंगलों में न मिले। यदि इस सिद्धान्त को देखना हो कि आबहवा का असर इंसान के रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, शरीर और मस्तिष्क पर पड़ता है तो उसका जीता-जागता सबूत भारत में बसने वाले भिन्न-भिन्न प्रान्तों के लोग देते हैं। इसी तरह मुख्य-मुख्य भाषाएँ भी कई प्रचलित हैं और बोलियों की तो कोई गिनती ही नहीं; क्योंकि यहाँ एक कहावत मशहूर है—

'कोस-कोस पर बदले पानी, चार कोस पर बानी।'

भिन्न-भिन्न धर्मों के माननेवाले भी, जो सारी दुनिया के सभी देशों में बसे हुए हैं, यहाँ भी थोड़ी-बहुत संख्या में पाये जाते हैं और जिस तरह यहाँ की बोलियों की गिनती आसान नहीं, उसी तरह यहाँ भिन्न-भिन्न धर्मों के सम्प्रदायों की भी गिनती आसान नहीं। इन विभिन्नताओं को देखकर अगर अपरिचित आदमी घबड़ाकर कह उठे कि यह एक देश नहीं, अनेक देशों का एक समूह है; यह एक जाति नहीं, अनेक जातियों का समूह है तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं। क्योंकि ऊपर से देखने वाले को, जो गहराई में नहीं जाता, विभिन्नता ही देखने में आयेगी। पर विचार करके देखा जाय तो इन विभिन्नताओं की तह में एक ऐसी समता और एकता फैली हुई है, जो अन्य विभिन्नताओं को ठीक उसी तरह पिरो लेती है और पिरोकर एक सुन्दर समूह बना देती है— जैसे रेशमी धागा भिन्न-भिन्न प्रकार की और विभिन्न रंग की सुन्दर मणियों अथवा फूलों को पिरोकर एक सुन्दर हार तैयार कर देता है, जिसकी प्रत्येक मणि या फूल दूसरों से न तो अलग है और न हो सकता है और केवल अपनी ही सुन्दरता से लोगों को मोहता नहीं, बल्कि दूसरों की सुन्दरता से वह स्वयं सुशोभित होता है और इसी तरह अपनी सुन्दरता से दूसरों को भी सुशोभित करता है। यह केवल एक काव्य की भावना नहीं है, बल्कि एक ऐतिहासिक सत्य है, जो हजारों वर्षों से अलग-अलग अस्तित्व रखते हुए अनेकानेक जल-प्रपातों और प्रवाहों का संगमस्थल बनकर एक प्रकाण्ड और प्रगाढ़ समुद्र के रूप में भारत में व्याप्त है, जिसे भारतीय संस्कृति का नाम दे सकते हैं। इन अलग-अलग नदियों के उद्गम भिन्न-भिन्न हो सकते हैं और रहे हैं। इनकी धाराएँ भी अलग-अलग बही हैं और प्रदेश के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के अन्न और फल-फूल पैदा करती रही हैं; पर सब में एक ही शुद्ध, सुन्दर, स्वस्थ और शीतल जल बहता रहा है, जो उद्गम और संगम में एक ही हो जाता है।

आज हम इसी निर्मल, शुद्ध, शीतल और स्वस्थ अमृत की तलाश में हैं और हमारी इच्छा, अभिलाषा और प्रयत्न यह है कि वह इन सभी अलग-अलग बहती हुई नदियों में अभी भी उसी तरह बहता रहे और इनको वह अमर तत्त्व देता रहे, जो जमाने के हजारों थपेड़ों को बरदाश्त करता हुआ भी आज हमारे अस्तित्व को कायम रखे हुए है और रखेगा, जैसा कि हमारे कवि इकबाल कह गये हैं—

'बाकी मगर है अब तक नामो-निशाँ हमारा,
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जमाँ हमारा।'

यह एक नैतिक और आध्यात्मिक स्रोत है, जो अनन्तकाल से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्पूर्ण देश में बहता रहा है और कभी-कभी मूर्त रूप होकर हमारे सामने आता रहा है। यह हमारा सौभाग्य रहा है कि हमने ऐसे ही एक मूर्त रूप को अपने बीच चलते-फिरते, हँसते-रोते भी देखा है और जिसने अमरत्व की याद दिलाकर हमारी सूखी हड्डियों में नयी मज्जा डाल हमारे मृतप्राय शरीर में नये प्राण फूँके और मुरझाये हुए दिलों को फिर खिला दिया। वह अमरत्व सत्य और अहिंसा का है, जो केवल इसी देश के लिए नहीं, आज मानवमात्र के जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक हो गया है। हम इस देश में प्रजातन्त्र की स्थापना कर चुके हैं, जिसका अर्थ है व्यक्ति की पूर्ण स्वतन्त्रता, जिसमें वह अपना पूरा विकास कर सके और साथ ही सामूहिक और सामाजिक एकता भी। व्यक्ति और समाज के बीच में विरोध का आभास होता है। व्यक्ति अपनी उन्नति और विकास चाहता है और यदि एक की उन्नति और विकास दूसरे की उन्नति और विकास में बाधक हो तो संघर्ष पैदा होता है और यह संघर्ष तभी दूर हो सकता है, जब सबके विकास के पथ अहिंसा के हों। हमारी सारी संस्कृति का मूलाधार इसी अहिंसा-तत्त्व पर स्थापित रहा है। जहाँ-जहाँ हमारे नैतिक सिद्धान्तों का वर्णन आया है, अहिंसा को ही उसमें मुख्य स्थान दिया गया है। अहिंसा का दूसरा नाम या दूसग रूप त्याग है और हिंसा का दूसरा रूप या नाम स्वार्थ है, जो प्रायः भोग के रूप में हमारे सामने आता है। पर हमारी सभ्यता ने तो भोग भी त्याग से ही निकाला है और भोग भी त्याग में ही पाया है। श्रुति कहती है—'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' इसी के द्वारा हम व्यक्ति-व्यक्ति के बीच का विरोध, व्यक्ति और समाज के बीच का विरोध, समाज और समाज के बीच का विरोध, देश और देश के बीच के विरोध को मिटाना चाहते हैं। हमारी सारी नैतिक चेतना इसी तत्त्व से ओत-प्रोत है। इसलिए हमने भिन्न-भिन्न विचारधाराओं को स्वच्छतापूर्वक अपने-अपने रास्ते बहने दिया। भिन्न-भिन्न धर्मों और सम्प्रदायों को स्वतन्त्रतापूर्वक पनपने और भिन्न-भिन्न भाषाओं को विकसित और प्रस्फुटित होने दिया। भिन्न-भिन्न देशों के लोगों को अपने में अभिन्न भाव से मिल जाने दिया। भिन्न-भिन्न देशों की संस्कृतियों को अपने में मिलाया और अपने को उनमें मिलने दिया और देश और विदेश में एकसूत्रता तलवार के जोर से नहीं, बल्कि प्रेम और सौहार्द से स्थापित की। दूसरों के हाथों और पैरों पर, घर और सम्पत्ति पर जबरदस्ती कब्जा नहीं किया, उनके हृदयों को जीता और इसी वजह से प्रभुत्व, जो चरित्र और चेतना का प्रभुत्व है, आज भी बहुत अंशों में कायम है, जब हम स्वयं उस चेतना को बहुत अंशों में भूल गये हैं और भूलते जा रहे हैं।

वैज्ञानिक और औद्योगिक विकास के उद्दण्ड परिणामों से अपने को सुरक्षित रखकर हम उनका उपयोग अपनी रीति से किस प्रकार करें—इस बारे में दो बातों का हमें बराबर ध्यान रखना है। पहली बात तो यह है कि हर प्रकार की प्रकृतिजन्य और मानव-कृत विपदाओं के पड़ने पर भी हम लोगों की सृजनात्मक शक्ति कम नहीं हुई। हमारे देश में साम्राज्य बने और मिटे, विभिन्न सम्प्रदायों का उत्थान-पतन हुआ, हम विदेशियों से आक्रान्त और पददलित हुए, हम पर प्रकृति और मानवों ने अनेक बार मुसीबतों के पहाड़ ढा दिये, पर फिर भी हम लोग बने रहे, हमारी संस्कृति बनी रही और हमारा जीवन एवं सृजनात्मक शक्ति बनी रही। हम अपने दुर्दिनों में भी ऐसे मनीषियों और कर्मयोगियों को पैदा कर सके जो संसार के इतिहास के किसी युग में अत्यन्त उच्च आसन के अधिकारी होते। अपनी दासता के दिनों में हमने गाँधी जैसे कर्मठ, धर्मनिष्ठ, क्रान्तिकारी को, रवीन्द्र जैसे मनीषी कवि को और अरविन्द तथा रमण महर्षि जैसे योगियों को पैदा किया और उन्हीं दिनों में हमने ऐसे अनेक उद्भट विद्वान् और वैज्ञानिक पैदा किये, जिनका सिक्का संसार मानता है। जिन हालातों में पड़कर संसार की प्रसिद्ध जातियाँ मिट गयीं, उनमें हम न केवल जीवित ही रहे, वरन् अपने आध्यात्मिक और बौद्धिक गौरव को बनाये रख सके। उसका कारण यही है कि हमारी सामूहिक चेतना ऐसे नैतिक आधार पर ठहरी हुई है, जो पहाड़ों से भी मजबूत, समुद्रों से भी गहरी और आकाश से भी अधिक व्यापक है।

दूसरी बात जो इस सम्बन्ध में विचारणीय है, वह यह है कि संस्कृति अथवा सामूहिक चेतना ही हमारे देश का प्राण है। इसी नैतिक चेतना के सूत्र से हमारे नगर और ग्राम, हमारे प्रदेश और सम्प्रदाय, हमारे विभिन्न वर्ग और जातियाँ आपस में बँधी हुई हैं। जहाँ उनमें और सब तरह की विभिन्नताएँ हैं, वहाँ उन सबमें यह एकता है। इसी बात को ठीक तरह से पहचान लेने से बापू ने जनसाधारण को बुद्धिजीवियों के नेतृत्व में क्रान्ति करने के लिए तत्पर करने के लिए इसी नैतिक चेतना का सहारा लिया था। अहिंसा, सेवा और त्याग की बातों से जनसाधारण का हृदय इसीलिए आन्दोलित हो उठा; क्योंकि उन्हीं से तो वह शताब्दियों से प्रभावित और प्रेरित रहा। जनसाधारण के हृदय में उनकी धड़कती चेतना को क्रान्ति की शक्ति बनाने में ही बापू की दूरदर्शिता थी और इसी में उनकी सफलता थी।

मैं तो यही समझता हूँ कि यदि हमें अपने समाज और देश में उन सब अन्यायों और अत्याचारों की पुनरावृत्ति नहीं करनी है, जिनके द्वारा आज के सारे संघर्ष उत्पन्न होते हैं तो हमें अपनी ऐतिहासिक, नैतिक चेतना या संस्कृति के आधार पर ही अपनी आर्थिक व्यवस्था बनानी चाहिए अर्थात् उसके पीछे वैयक्तिक लाभ और भोग की भावना प्रधान न होकर वैयक्तिक त्याग और

सामाजिक कल्याण की भावना ही प्रधान होनी चाहिए। हमारे प्रत्येक देशवासी को अपने सारे आर्थिक व्यापार उसी भावना से प्रेरित होकर करने चाहिए। वैयक्तिक स्वार्थों और स्वत्वों पर जोर न देकर वैयक्तिक कर्त्तव्य और सेवा-निष्ठा पर जोर देना चाहिए और हमारी प्रत्येक कार्यवाही इसी तराजू पर तौली जानी चाहिए। किसी भी क्रिया के पीछे जो भावना निहित होती है, उसका बड़ा प्रभाव हुआ करता है और परिणाम भी, यद्यपि देखने में क्रिया का रूप एक ही क्यों न हो। एक छोटे-से उदाहरण से यह बात स्पष्ट की जा सकती है। एक सम्मिलित परिवार है, जिसका प्रत्येक व्यक्ति इस नैतिक भावना से काम करता है कि उसका कर्त्तव्य है कि सभी व्यक्तियों को अधिक-से-अधिक वह सुख पहुँचा सके और प्रत्येक व्यक्ति पूरी शक्ति लगाकर जितना भी उपार्जन किया जा सकता है, करता है। सबका सामूहिक उपार्जन मान लीजिए कि एक रकम होती है, जिससे अधिक उपार्जन करने की शक्ति परिवार में नहीं हो। उसी परिवार का प्रत्येक व्यक्ति इस भावना से काम करता है कि उसको अपने सुख के लिए अधिक-से-अधिक उपार्जन करना चाहिए और उपार्जन करता हो तो भी सब व्यक्तियों का सामूहिक उपार्जन उतना होगा, जितना कि प्रथमोक्त स्थिति में और सामूहिक सम्पत्ति दोनों स्थितियों में बराबर होगी और उसका बराबर बँटवारा कर दिया जाय तो प्रत्येक को बराबर ही सुख होगा। पर इन दोनों स्थितियों में बहुत बड़ा अन्तर यह पड़ जायगा कि पहली स्थिति में संघर्ष का कोई भय नहीं; क्योंकि कोई केवल अपने लिए कुछ नहीं कर रहा है और दूसरे में संघर्ष अनिवार्य है; क्योंकि प्रत्येक अपने लिए ही कर रहा है। हम समझते हैं कि हमारी संस्कृति का तकाजा है कि पहली स्थिति में हम अपने को लायें और यदि संसार का संघर्ष मिटाना है तो उसी भावना को सर्वमान्य बनाना होगा। जब तक ऐसा नहीं होता, संघर्ष, चाहे वह व्यक्ति-व्यक्ति के बीच का हो, चाहे देश-देश के बीच का हो, वर्तमान रहेगा ही।

आज विज्ञान मनुष्यों के हाथों में अद्‌भुत और अतुल शक्ति दे रहा है, उसका उपयोग एक व्यक्ति और समूह के उत्कर्ष और दूसरे व्यक्ति और समूह के गिराने में होता ही रहेगा। इसलिए हमें उस भावना को जाग्रत रखना है और उसे जाग्रत रखने के लिए कुछ ऐसे साधनों को भी हाथ में रखना होगा, जो उस अहिंसात्मक त्याग-भावना को प्रोत्साहित करें और भोग-वासना को दबाये रखें। नैतिक अंकुश के बिना शक्ति मानव के लिए हितकर नहीं होती। वह नैतिक अंकुश यह चेतना या भावना ही दे सकती है। वही उस शक्ति को परिमित भी कर सकती है और उसके उपयोग को नियन्त्रित भी।

वर्तमान युग में भारतीय संस्कृति के समन्वय के प्रश्न के अतिरिक्त यह बात भी विचारणीय है कि भारत की प्रत्येक प्रादेशिक भाषा की सुन्दर और आनन्दप्रद कृतियों का स्वाद भारत के अन्य प्रदेशों के लोगों को कैसे चखाया जाय। मैं समझता हूँ कि इस बारे में दो बातें विचारणीय हैं। क्या इस सम्बन्ध में यह उचित नहीं होगा कि प्रत्येक भाषा की साहित्यिक संस्थाएँ उस भाषा की कृतियों को संघ-लिपि अर्थात् देवनागरी में भी छपवाने का आयोजन करें। मुझे विश्वास है कि कम-से-कम जहाँ तक उत्तर की भाषाओं का सम्बन्ध है, यदि वे सब अपनी कृतियों को देवनागरी में भी छपवाने लगें तो उनका स्वाद लगभग सारे उत्तर भारत में लोग आसानी से ले सकेंगे; क्योंकि इन सब भाषाओं में इतना साम्य है कि एक भाषा का अच्छा ज्ञाता दूसरी भाषाओं की कृतियों को स्वल्प परिश्रम से समझ जायगा।

दूसरी बात यह है, ऐसी संस्था की स्थापना की जाय, जो इन सब भाषाओं में आदान-प्रदान का सिलसिला अनुवाद द्वारा आरम्भ करे। यदि सब भारतीय भाषाओं का प्रतिनिधित्व करनेवाला सांस्कृतिक संगम स्थापित हो जाता है तो इस बारे में बड़ी सहूलियत होगी। साथ ही वह संगम साहित्यिकों को प्रोत्साहन भी प्रदान कर सकेगा और अच्छे साहित्य के स्तर के निर्धारण और सृजन करने में भी पर्याप्त अच्छा कार्य कर सकेगा। साहित्य संस्कृति का एक व्यक्त रूप है। उसके दूसरे रूप—गान, नृत्य, चित्रकला, वास्तुकला, मूर्तिकला इत्यादि में देखे जाते हैं। भारत अपनी एकसूत्रता इन सब कलाओं द्वारा प्रदर्शित करता आया है।

इन सब विषयों पर हमको इस प्रतिज्ञा को ध्यान में रखकर विचार करना है, जो इस भवन में शाहजहाँ ने उसके निर्माण के पश्चात् खुदवा दी थी। उसने गर्व के साथ खुदवा दिया था—

'गर फिरदौस बर रुए जमीनस्त,
हमींअस्तो, हमींअस्तो, हमींअस्त।''

(यदि पृथ्वी पर स्वर्ग कहीं है तो यहाँ ही है, यहाँ ही है, यहाँ ही है) यह स्वप्न तभी सत्य होगा और पृथ्वी पर स्वर्ग तो तभी स्थापित होगा, जब अहिंसा, सत्य और सेवा का आदर्श सारे भूमण्डल में मानव-जीवन का मुख्य आधार और प्रधान प्रेरकशक्ति हो गया होगा।

● **राजेन्द्र प्रसाद**

॥ अभ्यास प्रश्न ॥

1. निम्नलिखित गद्यांशों के नीचे दिए गए प्रश्नों के उत्तर दीजिए–

(क) अगर असम की पहाड़ियों में वर्ष में तीन सौ इंच वर्षा मिलेगी, तो जैसलमेर की तप्तभूमि भी मिलेगी, जहाँ साल में दो-चार इंच भी वर्षा नहीं होती। कोई ऐसा अन्न नहीं, जो यहाँ उत्पन्न न किया जाता हो। कोई ऐसा फल नहीं, जो यहाँ पैदा नहीं किया जा सके। कोई ऐसा खनिज पदार्थ नहीं, जो यहाँ के भूगर्भ में न पाया जाता हो और न कोई ऐसा वृक्ष अथवा जानवर है, जो यहाँ फैले हुए जंगलों में न मिले। यदि इस सिद्धान्त को देखना हो कि आबहवा का असर इंसान के रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, शरीर और मस्तिष्क पर पड़ता है तो उसका जीता-जागता सबूत भारत में बसने वाले भिन्न-भिन्न प्रान्तों के लोग देते हैं।

प्रश्न– (i) उपर्युक्त गद्यांश का सन्दर्भ लिखिए।

(ii) गद्यांश के रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।

(iii) उपर्युक्त गद्यांश में असम और जैसलमेर की वर्षा के विषय में क्या बताया गया है?

(ख) भिन्न-भिन्न धर्मों के माननेवाले भी, जो सारी दुनिया के सभी देशों में बसे हुए हैं, यहाँ भी थोड़ी-बहुत संख्या में पाए जाते हैं और जिस तरह यहाँ की बोलियों की गिनती आसान नहीं, उसी तरह यहाँ भिन्न-भिन्न धर्मों के सम्प्रदायों की भी गिनती आसान नहीं। इन विभिन्नताओं को देखकर यदि अपरिचित आदमी घबड़ाकर कह उठे कि यह एक देश नहीं अनेक देशों का एक समूह है; यह एक जाति नहीं, अनेक जातियों का समूह है तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं।

प्रश्न– (i) उपर्युक्त गद्यांश का सन्दर्भ लिखिए।

(ii) गद्यांश के रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।

(iii) उपर्युक्त गद्यांश में भारत की बोलियों एवं सम्प्रदायों के सम्बन्ध में क्या बताया गया है?

(ग) यह केवल एक काव्य की भावना नहीं है, बल्कि एक ऐतिहासिक सत्य है, जो हजारों-वर्षों से अलग-अलग अस्तित्व रखते हुए अनेकानेक जल-प्रपातों और प्रवाहों का संगमस्थल बनकर एक प्रकाण्ड और प्रगाढ़ समुद्र के रूप में भारत में व्याप्त है जिसे भारतीय संस्कृति का नाम दे सकते हैं। इन अलग-अलग नदियों के उद्‌गम भिन्न-भिन्न हो सकते हैं और रहे हैं। इनकी धाराएँ भी अलग-अलग बही हैं और प्रदेश के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के अन्न और फल-फूल पैदा करती रही हैं; पर सब में एक ही शुद्ध, सुन्दर, स्वस्थ और शीतल जल बहता रहा है, जो उद्‌गम और संगम में एक ही हो जाता है।

प्रश्न– (i) उपर्युक्त गद्यांश का सन्दर्भ लिखिए।

(ii) गद्यांश के रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।

(iii) उपर्युक्त गद्यांश के आधार पर भारतीय संस्कृति की एक विशेषता बताइए।

(घ) आज हम इसी निर्मल, शुद्ध-शीतल और स्वस्थ अमृत की तलाश में हैं और हमारी इच्छा, अभिलाषा और प्रयत्न यह है कि वह इन सभी अलग-अलग बहती हुई नदियों में अभी भी उसी तरह बहता रहे और इनको वह अमर तत्त्व देता रहे, जो जमाने के हजारों थपेड़ों को बर्दाश्त करता हुआ भी आज हमारे अस्तित्व को कायम रखे हुए है और रखेगा। **(2016CD)**

प्रश्न– (i) उपर्युक्त गद्यांश का सन्दर्भ लिखिए।

(ii) गद्यांश के रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।

(iii) उपर्युक्त गद्यांश के अनुसार हमारी इच्छा और प्रयत्न क्या है?

अथवा **हमारे अस्तित्व को कौन कायम रखे हुए है?**

(ङ) यह एक नैतिक और आध्यात्मिक स्रोत है, जो अनन्त काल से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्पूर्ण देश में बहता रहा है और कभी-कभी मूर्त रूप होकर हमारे सामने आता रहा है। यह हमारा सौभाग्य रहा है कि हमने ऐसे ही एक मूर्त रूप को अपने बीच चलते-फिरते, हँसते-रोते भी देखा है और जिसने अमरत्व की याद दिलाकर हमारी सूखी हड्डियों में नई मज्जा डाल हमारे मृतप्राय शरीर में नए प्राण फूँके और मुरझाए हुए दिलों को फिर खिला दिया। वह अमरत्व सत्य और अहिंसा का है, जो केवल इसी देश के लिए नहीं, आज मानव मात्र के जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक हो गया है। **(2020MB, ME)**

प्रश्न– (i) उपर्युक्त गद्यांश का सन्दर्भ लिखिए।

(ii) गद्यांश के रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।

(iii) (a) लेखक ने गद्यांश में क्या सन्देश देना चाहा है?

(b) हमें अमरत्व की याद दिलाकर किसने मृतप्राय शरीर में नये प्राण फूँके?

(च) व्यक्ति अपनी उन्नति और विकास चाहता है और यदि एक की उन्नति और विकास दूसरे की उन्नति और विकास में बाधक हो, तो संघर्ष उत्पन्न होता है और यह संघर्ष तभी दूर हो सकता है, जब सबके विकास के पथ अहिंसा के हों। हमारी सारी संस्कृति का मूलाधार इसी अहिंसा तत्त्व पर स्थापित रहा है। जहाँ-जहाँ हमारे नैतिक सिद्धान्तों का वर्णन आया है, अहिंसा को ही उसमें मुख्य स्थान दिया गया है। अहिंसा का दूसरा नाम या दूसरा रूप त्याग है और हिंसा का दूसरा रूप या दूसरा नाम स्वार्थ है, जो प्रायः भोग के रूप में हमारे सामने आता है। पर हमारी सभ्यता ने तो भोग भी त्याग से ही निकाला है और भोग भी त्याग में ही पाया है।

प्रश्न– (i) उपर्युक्त गद्यांश का सन्दर्भ लिखिए।

(ii) गद्यांश के रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।

(iii) हमारी संस्कृति का मूलाधार क्या है?

(छ) हम अपने दुर्दिनों में भी ऐसे मनीषियों और कर्मयोगियों को पैदा कर सके, जो संसार के इतिहास के किसी युग में अत्यन्त उच्च आसन के अधिकारी होते। अपनी दासता के दिनों में हमने गाँधी जैसे कर्मठ, धर्मनिष्ठ, क्रान्तिकारी को, रवीन्द्र जैसे मनीषी कवि को और अरविन्द तथा रमण महर्षि जैसे योगियों को पैदा किया और उन्हीं दिनों में हमने ऐसे अनेक उद्भट विद्वान् और वैज्ञानिक पैदा किए, जिनका सिक्का संसार मानता है। जिन हालातों में पड़कर संसार की प्रसिद्ध जातियाँ मिट गईं, उनमें हम न केवल जीवित ही रहे वरन् अपने आध्यात्मिक और बौद्धिक गौरव को बनाए रख सके। उसका कारण यही है कि हमारी सामूहिक चेतना ऐसे नैतिक आधार पर ठहरी हुई है जो पहाड़ों से भी मजबूत, समुद्रों से भी गहरी और आकाश से भी अधिक व्यापक है।

अथवा जिन हालातों में पड़कर संसार .....से भी अधिक व्यापक है? **(2020MD)**

प्रश्न– (i) उपर्युक्त गद्यांश का सन्दर्भ लिखिए।

(ii) गद्यांश के रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।

(iii) (a) हम अपने दुर्दिनों में किस प्रकार के मनीषियों को पैदा कर सके हैं?

(b) लेखक ने गद्यांश में क्या सन्देश देना चाहा है?

(ज) मैं तो यही समझता हूँ कि यदि हमें अपने समाज और देश में उन सब अन्यायों और अत्याचारों की पुनरावृत्ति नहीं करनी है, जिनके द्वारा आज के सारे संघर्ष उत्पन्न होते हैं, तो हमें अपनी ऐतिहासिक, नैतिक चेतना या संस्कृति के आधार पर ही अपनी आर्थिक व्यवस्था बनानी चाहिए अर्थात् उसके पीछे वैयक्तिक लाभ और भोग की भावना प्रधान न होकर वैयक्तिक त्याग और सामाजिक कल्याण की भावना ही प्रधान होनी चाहिए। हमारे प्रत्येक देशवासी को अपने सारे आर्थिक व्यापार उसी भावना से प्रेरित होकर करने चाहिए। वैयक्तिक स्वार्थों और स्वत्वों पर जोर न देकर वैयक्तिक कर्त्तव्य और सेवा-निष्ठा पर जोर देना चाहिए और प्रत्येक कार्यवाही इसी तराजू पर तौली जानी चाहिए। **(2019AB, AD)**

प्रश्न– (i) उपर्युक्त गद्यांश का सन्दर्भ लिखिए।

(ii) गद्यांश के रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।

(iii) (a) हमें अपने आर्थिक व्यापार किस भावना से प्रेरित होकर करना चाहिए?

(b) अन्यायों एवं अत्याचारों को रोकने का उपाय क्या है?

(झ) आज विज्ञान मनुष्यों के हाथों में अद्भुत और अतुल शक्ति दे रहा है, उसका उपयोग एक व्यक्ति और समूह के उत्कर्ष और दूसरे व्यक्ति और समूह के गिराने में होता ही रहेगा। इसलिए हमें उस भावना को जाग्रत रखना है और उसे जाग्रत रखने के लिए कुछ

ऐसे साधनों को भी हाथ में रखना होगा, जो उस अहिंसात्मक त्याग-भावना को प्रोत्साहित करें और भोग-वासना को दबाए रखें। नैतिक अंकुश के बिना शक्ति मानव के लिए हितकर नहीं होती। वह नैतिक अंकुश यह चेतना या भावना ही दे सकती है। वही उस शक्ति को परिमित भी कर सकती है और उसके उपयोग को नियंत्रित भी। **(2016CA)**

प्रश्न– (i) उपर्युक्त गद्यांश का सन्दर्भ लिखिए।
(ii) गद्यांश के रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।
(iii) आज विज्ञान मनुष्य को क्या दे रहा है?

(ञ) वैज्ञानिक और औद्योगिक विकास के उद्दण्ड परिणामों से अपने को सुरक्षित रखकर हम उनका उपयोग अपनी रीति से किस प्रकार करें – इस बारे में दो बातों का हमें बराबर ध्यान रखना है। पहली बात तो यह है कि हर प्रकार की प्रकृतिजन्य और मानवकृत विपदाओं के पड़ने पर भी हम लोगों की सृजनात्मक शक्ति कम नहीं हुई। हमारे देश में साम्राज्य बने और मिटे, विभिन्न सम्प्रदायों का उत्थान-पतन हुआ, हम विदेशियों से आक्रान्त और पददलित हुए, हम पर प्रकृति और मानवों ने अनेक बार मुसीबतों के पहाड़ ढा दिये, पर फिर भी हम लोग बने रहे, हमारी संस्कृति बनी रही और हमारा जीवन एवं सृजनात्मक शक्ति बनी रही। हम अपने दुर्दिनों में भी ऐसे मनीषियों और कर्मयोगियों को पैदा कर सके, जो संसार के इतिहास के किसी युग में अत्यन्त उच्च आसन के अधिकारी होते।

प्रश्न– (i) उपर्युक्त गद्य का सन्दर्भ लिखिए।
(ii) रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।
(iii) लेखक ने उपर्युक्त गद्यांश में भारतीयों की किस विशेषता का उल्लेख किया है?

(ट) हमारी संस्कृति का मूलाधार इसी अहिंसा तत्व पर स्थापित रहा है। जहाँ-जहाँ हमारे नैतिक सिद्धान्तों का वर्णन आया है, अहिंसा को ही उसमें मुख्य स्थान दिया गया है। अहिंसा का दूसरा नाम या दूसरा रूप त्याग है और हिंसा का दूसरा रूप या दूसरा नाम स्वार्थ है, जो प्रायः भोग के रूप में हमारे सामने आता है। पर हमारी सभ्यता ने तो भोग भी त्याग से ही निकाला है और भोग भी त्याग में ही पाया है। श्रुति कहती है–'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः'। इसी के द्वारा हम व्यक्ति-व्यक्ति के बीच का विरोध, व्यक्ति और समाज के बीच का विरोध, समाज और समाज के बीच का विरोध, देश और देश के बीच के विरोध को मिटाना चाहते हैं। हमारी सारी नैतिक चेतना इसी तत्त्व से ओत-प्रोत है। **(2019AE)**

प्रश्न– (i) उपर्युक्त गद्यांश का सन्दर्भ लिखिए।
(ii) रेखांकित अंशों की व्याख्या कीजिए।
(iii) (a) हमारे नैतिक सिद्धान्तों में किस चीज़ को प्रमुख स्थान दिया गया है? इसका दूसरा रूप क्या है?
(b) स्वार्थ के क्या-क्या दुष्परिणाम होते हैं?
(c) पारस्परिक विरोध को कैसे मिटाया जा सकता है?

(ठ) दूसरी बात, जो इस सम्बन्ध में विचारणीय है, वह यह है कि संस्कृति अथवा सामूहिक चेतना ही हमारे देश का प्राण है। इसी नैतिक चेतना के सूत्र से हमारे नगर और ग्राम, हमारे प्रदेश और सम्प्रदाय, हमारे विभिन्न वर्ग और जातियाँ आपस में बँधी हुई हैं, वहाँ उन सब में यह एकता है। इसी बात को ठीक तरह से पहचान लेने से बापू ने जनसाधारण को बुद्धिजीवियों के नेतृत्व में क्रान्ति करने के लिए इसी नैतिक चेतना का सहारा लिया था। अहिंसा, सेवा और त्याग की बातों से जनसाधारण का हृदय इसीलिए आन्दोलित हो उठा, क्योंकि उन्हीं से तो वह शताब्दियों से प्रभावित और प्रेरित रहा।

प्रश्न– (i) उपर्युक्त गद्यांश का सन्दर्भ लिखिए।
(ii) रेखांकित अंशों की व्याख्या कीजिए।
(iii) जनसाधारण का हृदय किन बातों से आन्दोलित हो उठा?

(ड) वर्तमान युग में भारतीय संस्कृति के समन्वय के प्रश्न के अतिरिक्त यह बात भी विचारणीय है कि भारत की प्रत्येक प्रादेशिक भाषा की सुन्दर और आनन्दप्रद कृतियों का स्वाद भारत के अन्य प्रदेशों के लोगों को कैसे चखाया जाय। मैं समझता हूँ कि इस बारे में दो बातें विचारणीय हैं। क्या इस सम्बन्ध में यह उचित नहीं होगा कि प्रत्येक भाषा की साहित्यिक संस्थाएँ उस भाषा की कृतियों को संघ-लिपि अर्थात् देवनागरी में छपवाने का आयोजन करें। मुझे विश्वास है कि कम से कम जहाँ तक उत्तर की

भाषाओं का सम्बन्ध है, यदि वे सब अपनी कृतियों को देवनागरी में छपवाने लगें तो उनका स्वाद लगभग सारे उत्तर भारत के लोग आसानी से ले सकेंगे, क्योंकि इन सब भाषाओं में इतना साम्य है कि एक भाषा का अच्छा ज्ञाता दूसरी भाषा की कृतियों को स्वल्प परिश्रम से समझा जायेगा। **(2019AC)**

प्रश्न– (i) उपर्युक्त गद्यांश का सन्दर्भ लिखिए।
(ii) रेखांकित अंशों में से किसी एक अंश की व्याख्या कीजिए।
(iii) कृतियों को देवनागरी लिपि में छपवाने का क्यों सुझाव दिया गया है?

2. डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद का जीवन-परिचय देते हुए उनकी रचनाओं का उल्लेख कीजिए। **(2016CD, CE, CG, 17AB, 18HA, HF,19AC,20MC, MD, MB, MF)**

3. डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद की कृतियाँ एवं भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए।

4. हमारे देश में जाति, धर्म, जलवायु, आचार-विचार में जो इतनी विभिन्नता दिखायी देती है, उसका कारण क्या है?

5. देश की इस विभिन्नता में एकता स्थापित करनेवाली वस्तु को हम क्या कहते हैं?

6. भारतीय संस्कृति का मूल तत्त्व क्या है?

7. भारत की सांस्कृतिक एकता को स्पष्ट करने के लिए लेखक ने किन दो उपमाओं का सहारा लिया है?

8. भारतीय प्रजातन्त्र का मूल आधार क्या है?

9. 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः'—श्रुति के इस कथन को लेखक भारतीय संस्कृति की किस विशेषता को प्रकट करने के लिए उद्धृत करता है?

10. लेखक ने गाँधी, रवीन्द्र और अरविन्द का स्मरण किस सन्दर्भ में किया है?

11. वैज्ञानिक और औद्योगिक उन्नति का भारतीय संस्कृति पर विपरीत प्रभाव न पड़े, इसके लिए इस देश के मनीषियों ने क्या प्रयास किये हैं?

12. लेखक क्यों कहता है कि 'सामूहिक चेतना ही हमारे देश का प्राण है?'

13. इस सामूहिक चेतना को कैसे बनाये रखा जा सकता है?

14. लेखक देवनागरी लिपि की वकालत क्यों करता है?

15. भारत की एकसूत्रता बनाये रखने में भारतीय कलाओं का क्या महत्त्व है?

16. प्रस्तुत लेख में जहाँ कहीं लम्बे वाक्य आ गये हैं, उनके कथ्य को कई वाक्यों में अभिव्यक्त कीजिए।

17. प्रस्तुत लेख में कई शब्द ऐसे आये हैं जो न तत्सम हैं, न तद्भव; ऐसे विदेशी शब्दों की सूची तैयार कीजिए।

18. विभिन्नता, सुन्दरता, स्वतन्त्रता शब्दों में प्रत्यय बताइए।

➥ आन्तरिक मूल्यांकन

(1) डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद की कृतियों की एक सूची तैयार कीजिए।
(2) भारतीय संस्कृति की विशेषताओं को तालिका के माध्यम से दर्शाइए।

शब्दार्थ

जल-प्रपात = झरना। **अस्तित्व** = सत्ता। **प्रगाढ़** = अत्यन्त गहरा। **उद्गम** = निकलने का स्थान। **मज्जा** = हड्डियों के अन्दर का गूदे जैसा पदार्थ। **तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः** = उपनिषद् का एक उद्धरण जिसका अर्थ है—इसलिए त्याग (की भावना) से भोग करो। **सौहार्द** = सहृदयता, आत्मीयता, सद्भाव, मैत्री। **आक्रान्त** = जिस पर आक्रमण किया गया हो। **अरविन्द** = बंगाल के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी, जो बाद में महान् योगी और दार्शनिक के रूप में विख्यात हुए। **रमण महर्षि** = 'महर्षि' की उपाधि से विभूषित प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक डॉ0 चन्द्रशेखर वेंकटरमण; नोबुल पुरस्कार विजेता। **बुद्धिजीवी** = प्रमुखतः दिमागी कार्यों से जीविकोपार्जन करनेवाला, जैसे अध्यापक, वकील, लेखक आदि। **अतुल** = जिसे तोला न जा सके। **उत्कर्ष** = उन्नति। **परिमित** = सीमित।

●●